

---

## इकाई 11 रामकृष्ण मुखर्जी\*

---

### इकाई की रूपरेखा

- 11.0 उद्देश्य
- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 जीवन परिचय
- 11.3 मुख्य विचार
  - 11.3.1 ईस्ट इंडिया कंपनी के उत्थान एवं पतन के पीछे सामाजिक शक्तियाँ
  - 11.3.2 ग्रामीण अर्थव्यवस्था और समाज
  - 11.3.3 भारतीय सामाजिकी का समाजशास्त्र
  - 11.3.4 समाजशास्त्र और समाज
  - 11.3.5 वैज्ञानिक विधि
- 11.4 महत्वपूर्ण कृतियाँ
- 11.5 सारांश
- 11.6 संदर्भ
- 11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

### 11.0 उद्देश्य

---

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- रामकृष्ण मुखर्जी के जीवनचरित का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर सकें;
- उस सामाजिक-ऐतिहासिक परिवेश की व्याख्या कर सकें जिसने उनके लेखन व कार्य को प्रभावित किया;
- रामकृष्ण मुखर्जी की मुख्य अवधारणाएँ स्पष्ट कर सकें; तथा
- आधुनिक काल में समाजशास्त्र पर उनके प्रभाव पर चर्चा कर सकें।

---

### 11.1 प्रस्तावना

---

रामकृष्ण मुखर्जी भारत के उन कुछ समाजविज्ञानियों में से एक थे जिन्होंने सामाजिक वास्तविकता के मूल्यांकन में मार्क्सवादी संकल्पनाओं एवं विधि का निरंतर एवं फलदायी रूप से प्रयोग किया। उन्होंने पश्चिम की औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा अफ्रीका और भारत के अधीनीकृत लोगों के शोषण की नितांत वास्तविकता को उजागर किया। उन्होंने भारत व अन्य स्थानों के समाजों में वर्गों के विकास और वर्ग-विरोधाभास पर प्रकाश डाला। उन्होंने सहमति-जन्य दृष्टिकोण के स्थान पर संघर्ष के दृष्टिकोण को अपनाने की पुरजोर वकालत की। मुखर्जी कृत सभी पुस्तकों में उनकी इतिहास संबंधी गहरी समझ साफ़ दिखाई पड़ती है। इस इकाई का आरंभ हम उनके जीवनचरित की एक झलक से करेंगे। तदंतर हम उन मुख्य अवधारणाओं के विषय में जानेंगे जो उनके कृतित्व को अभिलक्षित करती हैं। आगे के पाठांश में हम उनकी कुछ महत्वपूर्ण कृतियों से तादात्म्य स्थापित करेंगे।

---

\* प्रो. गायत्री भट्टाचार्य, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता कृत।

## 11.2 जीवन परिचय

रामकृष्ण मुखर्जी का जन्म 7 नवंबर, 1917 को तत्कालीन बंगलादेश के जेस्सोर जिले में हुआ था। उनके पिता सतीन्द्रनाथ मुखर्जी और माता सती रानी देवी थीं। सतीन्द्रनाथ एक स्व-निर्मित व्यक्ति थे, जिन्होंने भारतीय रेलवे में एक इंजीनियर के रूप में काम किया था।

बालक रामकृष्ण को स्वतंत्र व कठोर परिश्रम की प्रतीति अपने पिता से विरासत के रूप में हुई। उनका मानना था कि मनुष्य को न केवल वंश-परंपरा पर निर्भर रहना चाहिए अपितु अपने पैरों पर खड़ा होना भी सीखना चाहिए। उनकी माता बंगाल के एक प्रतिष्ठित जमींदार कुलीन परिवार से थीं और कहा जाता है कि वह घमंडी स्वभाव की थीं। मुखर्जी की बेटी लिखती हैं – “युवा रामकृष्ण उन्नीसवीं सदी के बंगाल के तर्कवाद और प्रत्यक्षवाद की मुख्य अवधारणाओं के साथ अंतर्मिश्रित एक खस्ताहाल सामंती संस्कृति के विचित्र परिवेश में पला-बढ़ा था” (बनर्जी : पृष्ठ vi, 1995)।

मुखर्जी ने स्कूली शिक्षा रिपन कॉलेजिएट स्कूल और मित्रा इंस्टीट्यूशन से प्राप्त की। कलकत्ता विश्वविद्यालय से नृविज्ञान में विज्ञान स्नातकोत्तर की उपाधि उन्होंने एक विशेष पेपर के रूप में मानव आनुवंशिकी के साथ ली। उन्होंने पीएच.डी की उपाधि वर्ष 1955 में प्रोफेसर जे.सी. ट्रेवर के मार्गदर्शन में जेबेल मोया, सूडान के प्राचीन निवासियों की शारीरिक विशेषताओं पर शोध-प्रबंध लिखकर ली। यह कार्य जीवमिति विषयक था, न कि नृविज्ञान विषयक।

मुखर्जी मुख्य रूप से एक ओर मार्क्स और एंजेलस के तर्कशास्त्र से तो दूसरी ओर प्रोफेसर प्रशांत चंद्र महालनोबिस के सांख्यिकीय आँकड़ों (विशेषकर उनके  $D^2$  आँकड़ों) से प्रभावित थे। मार्क्सवादी तर्कशास्त्र का प्रभाव मुखर्जी पर सदैव हावी रहा, विशेषकर गाँव और अकाल पर उनके शुरुआती लेखन पर। यद्यपि आरंभ में मुखर्जी अपने जीवन में कुछ समय के लिए रामकृष्ण मिशन से जुड़े रहे, फिर वे कम्युनिस्ट पार्टी की बंगिया प्रोविन्शियल किसान सभा (BPKS) में शामिल हो गए। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (CPI) द्वारा उन्हें कृषक आंदोलन में शामिल कर लिया गया और वर्ष 1941 से 1946 तक उन्होंने बोगरा (अब बंगलादेश में) में हुए किसान आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। इस पार्टी (भाकपा) में रहते हुए मुखर्जी अनेक जाने-माने लोगों के संपर्क में आए, जिनमें प्रमुख थे पी.सी. जोशी, जिन्होंने वर्ष 1944 में उन्हें पी.सी. महालनोबिस से मिलवाया।

प्रोफेसर महालनोबिस उन दिनों भारतीय सांख्यिकी संस्थान (ISI) के लिए कार्यदल तैयार करने के प्रयोजन से कुछ नवयुवकों व नवयुवतियों की तलाश में थे। मुखर्जी ने इस संस्थान (ISI) में वर्ष 1944 में नियुक्ति पाकर अपनी सेवानिवृत्ति के वर्ष 1979 तक कार्य किया।

भारतीय सांख्यिकी संस्थान में प्रो. महालनोबिस के मार्ग-निर्देशन में मुखर्जी ने समाज और सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में सांख्यिकीय तकनीकों एवं वृहद प्रतिदर्श सर्वेक्षण विधियों को प्रयोग करने संबंधी प्रशिक्षण प्राप्त किया। इस प्रशिक्षण की परिणति वर्ष 1943 के ‘बंगाल अकाल के उत्तर प्रभाव’ संबंधी अध्ययन के परिणामों में सामने आई। ये परिणाम दो दस्तावेजों में प्रकाशित हुए “एन असैस्मेंट ऑफ़ दि आफ्टर-इफ़ैक्ट्स ऑफ़ ए फेमन इन बंगाल” (महालनोबिस, घोष एवं मुखर्जी) तथा “ए प्लान फॉर द रिहैबिलिटेशन ऑफ़ बंगाल” (चट्टोपाध्याय एवं मुखर्जी)। वर्ष 1946 में प्रकाशित इन दोनों दस्तावेजों ने पुस्तक *फेमन एंड रिहैबिलिटेशन ऑफ़ बंगाल* (1946) के लिए आधार प्रदान किया। मुखर्जी ने वृहद प्रतिदर्श सर्वेक्षण विधि को ग्रामीण ऋणग्रस्तता और ग्रामीण स्तरीकरण के अध्ययन में भी अपनाया। मुखर्जी की प्रसिद्धि उस समय बंगाल की सीमाओं को लाँघ गई जब वह बरोज़ वेलकम फाउंडेशन के हेनरी वेलकम के संपर्क में आए। हेनरी वेलकम ने सूडान में

जेबेल मोया से अनेक कपाल और कंकाल खोदकर निकाले थे। इन कपाल व कंकालों के अध्ययन एवं सूचीकरण के लिए बरो'ज़ फाउंडेशन ने कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी को शोध अनुदान दिया था। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी ने ऐसे विद्वानों को वहाँ भेजे जाने के लिए प्रोफेसर महालनोबिस से संपर्क किया जो मिस्र व सूडान से प्राप्त अवशेषों पर महालनोबिस के  $D^2$  आँकड़ों का प्रयोग कर जोबेल मोया में पाए गए कंकालों के प्रजातीय अभिलक्षण निर्धारित कर सकें। प्रो. महालनोबिस ने इस बाबत सी.आर. राव और रामकृष्ण मुखर्जी को कैम्ब्रिज भेजा। इस अध्ययन में प्राप्त परिणामों ने मुखर्जी के शोध-प्रबंध का मुख्य भाग प्रदान किया, जो कि वर्ष 1955 में *द फिजीकल करेक्टरिस्टिक्स ऑफ़ द एन्शंट इन्हैबिटेंट्स ऑफ़ जेबेल मोया, सूडान* के रूप में प्रकाशित हुआ।

वर्ष 1948-49 के दौरान रामकृष्ण मुखर्जी फ्रेंच कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों के निकट संपर्क में आए। कैम्ब्रिज में मुखर्जी ने मौरिस डोन द्वारा आर्थिक इतिहास विषय पर ली जाने वाली कक्षाओं में भाग लिया। यहीं रहते हुए मुखर्जी पुनः ग्रेट ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टी के रजनी पाल्मे दत्त के संपर्क में आए। डोन और दत्त दोनों ने मुखर्जी को मार्क्सवादी विचारधारा में ढाल दिया था। अतः उन्होंने जो कुछ भी लिखा, चाहे वह भारत अथवा विश्व के किसी भी अन्य भाग, विशेष रूप से साम्यवादी देश, का कृषक वर्ग पर हो या फिर ग्राम स्तरीकरण अथवा परिवार पर, उनके लेखन में वामपंथी रुझान ही नज़र आया। उन्होंने युगांडा जैसे उपनिवेशित देशों पर भी पुस्तकें लिखीं। उनकी तीन पुस्तकें *द राइज़ एंड फॉल ऑफ़ द ईस्ट इंडिया कंपनी, डायनेमिक्स ऑफ़ रूरल सोसाइटी* तथा *द प्रॉब्लम ऑफ़ युगांडा* वर्ष 1953 से 1957 के बीच ईस्ट बर्लिन स्थित हम्बोल्ट यूनिवर्सिटी में भारतीय अध्ययन के प्रोफेसर के रूप में उनके प्रवास के दौरान प्रकाशित हुईं।

मुखर्जी वर्ष 1957 में भारतीय सांख्यिकी संस्थान (कलकत्ता) में समाजशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में भारत लौटे। वह इस संस्थान (ISI) में समाजशास्त्रीय अनुसंधान इकाई गठित करने का प्रयास कर रहे थे। वह एक सफल लेखक थे। उन्हें वर्ष 1960 से 1975 के मध्य *द सोशियोलॉजिस्ट एंड सोशल चेंज इन इंडिया टुडे, वेस्ट बंगाल फेमिली स्ट्रक्चर* तथा *सोशल इंडिकेटर्स* प्रकाशित करते देखा गया। वर्ष 1977 और 1980 के बीच उन्होंने *सोशियोलॉजी ऑफ़ इंडियन सोशियोलॉजी* तथा *वॉट विल इट बी?* प्रकाशित कीं। सन 1980 के दशक से उनके शैक्षणिक प्रयासों में कुछ परिवर्तन देखे गए। प्रथम, वह यह सिद्ध करना चाहते थे कि 'सामाजिक विज्ञान' बहुवचन नहीं बल्कि एकवचन ही है। दूसरा, वस्तुनिष्ठ चरों का अध्ययन करने के लिए अपना परिमाणीकरण प्रयोग करने की बजाय उन्होंने वस्तुनिष्ठ चरों के साथ व्यक्तिपरक चरों के अध्ययन को भी शामिल कर लिया। अपनी पुस्तक *वाई यूनिटरी सोशल साइंस* में मुखर्जी ने सुझाव दिया कि सामाजिक विज्ञान (बहुवचन) के वर्गीकरण के स्थान पर किसी एक रूप अथवा एकात्मक सामाजिक विज्ञान (एकवचन) की स्थापना की जानी चाहिए।

### 11.3 मुख्य विचार

रामकृष्ण मुखर्जी को अनुसंधान पद्धति, भारतीय समाजशास्त्र और समाज पर उनके व्यापक लेखन के लिए जाना जाता है। आइए उनके विचारों के बारे में जानें।

#### 11.3.1 ईस्ट इंडिया कंपनी के उत्थान एवं पतन के पीछे सामाजिक शक्तियाँ

अपनी पुस्तक *द ईस्ट इंडिया कंपनी* (1955) में मुखर्जी ने भारत के समाज एवं उसकी अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों के विषय में ऐतिहासिक आँकड़ों का विश्लेषण करने में आदिम संचय की मार्क्सवादी अवधारणा का प्रयोग किया, जो कि ईस्ट इंडिया कंपनी प्रशासन द्वारा गढ़े गए थे। कम्पनी का उदय व्यापारिक पूँजीवाद बढ़ने के कारण हुआ था और उसका पतन ब्रिटेन में व्यापारिक पूँजीवाद के अवनयन और औद्योगिक पूँजीवाद के उन्नयन की वजह से हुआ। यह पूरी प्रक्रिया भारत के आर्थिक एवं राजनीतिक अनाच्छादन होने अर्थात् संरक्षण-आश्रय हट जाने से जुड़ी हुई थी। मुखर्जी ने दर्शाया कि किस प्रकार अंग्रेजों ने

स्वयं को समृद्ध करने के लिए भारत का शोषण करने के अपने प्रचन्न उद्देश्य के साथ ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से भारत को उपनिवेश बना लिया और फिर ब्रिटिश सरकार ने भारत की सत्ता हथिया कर भारतीयों को ही लूटा-खसोटा। अंग्रेजों का यह दावा कि सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ों और गतिहीन समाज के रूप में खड़े भारत को सम्य बनाने का 'बोझ गोरों पर' है, एक निंदनीय झूठ था। यह पूरी प्रक्रिया कंपनी के शासन काल के दौरान अंग्रेजों द्वारा पूँजी के आदिम संचय से ही जुड़ी थी।

पूँजी के 'आदिम संचय' से क्या अभिप्राय है, मुखर्जी ने इसकी व्याख्या नहीं की। बहरहाल, मार्क्स ने *दास कैपिटल - I* (भाग vii) में इसकी परिभाषा और विश्लेषण प्रस्तुत किया है। आदिम संचय उपभोग स्थगन से संबंध रखता है और यदि उत्पादन के पूँजीवादी संबंध पहले से ही विद्यमान हों तो उपभोग स्थगन पूँजी संचयन की ओर प्रवृत्त कर सकता है। उससे पूर्व दो प्रक्रियाओं का संचालन अधिशेष निर्माण का मार्ग प्रशस्त कर देता है, जिससे पूँजी का आदिम संचय होने लगता है। इनमें पहली प्रक्रिया है – भूमिधारक कृषक वर्ग को बेदखल करके उस भूमि पर केंद्रीभूत उत्पादन संबंधों का रूप परिवर्तन कर देना। भूमि से कृषि वर्ग को भगा देने से कृषिगत पूँजी और उद्योग दोनों के लिए दिहाड़ी मजदूरों की आय का स्रोत पैदा होता है। दूसरी ओर सहवर्ती प्रक्रिया में व्यापारियों द्वारा लाभ कमाया जाता है – न केवल गृह उद्योगों के उत्पादों की खोज से बल्कि वाणिज्यिक रूप से अविकसित समाजों के उत्पादों के विनिमय को बढ़ावा देकर और उत्पादन के दोनों क्षेत्रों का दोहन करके भी।

मुखर्जी ने उपर्युक्त दूसरी प्रक्रिया की कारगुजारी का विश्लेषण यूरोप की विभिन्न व्यापारिक कंपनियों के क्रियाकलापों के माध्यम से किया। आदिम संचय के महत्वपूर्ण चरणों का अनुसरण ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा भी किया गया। कंपनी द्वारा भारत के साथ व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त कर लिए जाने के तरीकों में शामिल थे – (a) अपने देश में रॉयल चार्टर का अनुदान; (b) भारत के साथ संबंध रखने वाले अन्य यूरोपीय व्यापारियों के साथ युद्धों में जीत; (c) चापलूसी, उत्कोच व छल-कपट से विभाजित भारतीय शासकों का समर्थन हासिल करना; तथा अंततः (d) उन पर व उनकी प्रजा पर सैन्य विजय। मुखर्जी ने कंपनी व उसके अधिकारियों द्वारा शुरू की गई व अंजाम दी गई भारत की लूट-खसोटा व लूटमार के स्वरूप को व्यापक ऐतिहासिक आँकड़ों की सहायता से दर्शाया है।

अंग्रेजों द्वारा भारत में स्वतंत्रता व न्याय तथा सुशासन को बढ़ावा दिए जाने संबंधी प्रचार के विपरीत, कंपनी के कपट व उत्कोच के तथा उत्पीड़न व विश्वासघात के खेल को ब्रिटिश संसद व सरकार तथा जनसामान्य की मौन स्वीकृति प्राप्त थी, जो कि मानव चरित्र का सबसे निकृष्ट रूप उजागर करता था। कंपनी ने 'सस्ता खरीदो – महँगा बेचो' नीति का बेरहमी से पालन किया। अपनी इसी इच्छा की पूर्ति हेतु कंपनी ने भारतीय व्यापारियों के अधिकार छीन लिए, भारतीयों के फलते-फूलते वस्त्र व अन्य उद्योग नष्ट कर दिए तथा कारीगरों व किसानों का जीवन उजाड़ दिया। व्यापार से जुड़ा मध्य वर्ग फल-फूल नहीं सका क्योंकि उसे पतनशील सामंती व्यवस्था से कोई संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ था। यह वर्ग निश्चय के साथ भारतीय समाज की सामंती शक्ति के अधीन ही बना रहा।

सर्वोच्च राजनीतिक सत्ता के अधिकार में किसी सशक्त नौसेना के अभाव ने अन्य देशों के साथ व्यापार में देश की आदत कमजोर हो गई। हमारे व्यापारी वर्ग को विदेशी व्यापारियों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। यूरोपीय, विदेश व्यापार हेतु विशेषकर ब्रिटिश, व्यापारियों ने भारतीयों पर नियंत्रण पाने के लिए उनकी इस कमजोरी का कपटतापूर्वक प्रयोग किया।

अपनी कुटिल नीतियों से बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला पर कंपनी की सैन्य विजय के बाद अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के पूर्ण राजनीतिक दमन का मार्ग प्रशस्त हो गया। इसके बाद कंपनी ने न केवल भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य भागों में अपना क्षेत्रीय विस्तार सुनिश्चित

किया, उसने बनियों और गुमाशतों के रूप में एक 'औपनिवेशिक व्यापारी मध्य वर्ग' का भी निर्माण कर दिया। कंपनी अतिशय लगान वसूलने के काम में भी लगी रही। कंपनी के प्रशासन ने जमींदारों की विभिन्न श्रेणियों समेत कृषक वर्ग का पूरा धन हड़प लिया। देश का ग्रामीण क्षेत्र सूखा, बाढ़, अकाल व महामारी की चपेट में था। नगर इसलिए उजड़ गए कि अठारहवीं शताब्दी के ब्रिटेन के आगामी उद्योगों द्वारा विनिर्मित वस्तुओं की माँग बढ़ाने के लिए स्वदेशी उद्योगों एवं कारीगरों को जानबूझकर उजाड़ दिया गया था। उनके पास न्याय पाने का कोई जरिया भी तो नहीं था।

विदेशी सत्ता द्वारा थोपा गया "राज" सिंचाई व्यवस्था का निर्माण एवं रखरखाव जैसे "सार्वजनिक कार्यों" की घोर उपेक्षा कर निष्ठुर साबित हुआ। ब्रिटिश सरकार द्वारा सीधे कंपनी के हाथों से सत्ता की बागडोर ले लिए जाने और भारत में व्यापार के अपने एकाधिकार को समाप्त कर देने के बाद भी उनकी यही नीति जारी रही। इसका कारण इंग्लैंड में उभरते हुए औद्योगिक मध्य वर्ग का सुदृढीकरण था, जो कि उस व्यापारी मध्य वर्ग द्वारा पूँजी के आदिम संचय से लाभान्वित होता था जिसकी ईस्ट इंडिया कंपनी एक उल्लेखनीय प्रतिनिधि थी। उदीयमान औद्योगिक मध्य वर्ग को उस नीति से लाभ होता था जिसके अंतर्गत ब्रिटिश विनिर्माताओं को गवर्नर-जनरल व कमर्शियल रेज़िडेन्ट्स के माध्यम से भारत में जबरन लाया गया था, जबकि भारतीय विनिर्माताओं को निषेधात्मक शुल्क दरों के माध्यम से इंग्लैंड से बाहर निकाल दिया गया था।

यह सत्य है कि इंग्लैंड उद्योग में अनेक नवपरिवर्तनों का साक्षी रहा है। किंतु इनमें अनेक नवोत्पाद निष्क्रिय ही रहे हैं – सदियों से वे इस प्रतीक्षा में प्रसुप्त हैं कि उनके लिए पर्याप्त भंडार हो अथवा उन्हें काम में लेने के लिए पर्याप्त बल संचित हो। यह भंडार हमेशा मुद्रा भंडार का आकार ले लेता है और मुद्रा का संचय नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उसमें प्रवाह बना रहना चाहिए। कंपनी द्वारा भारत का शोषण किए जाने से हो रहे भारतीय निधि के अंतर्वाह ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी थी कि भारतीयों को "ब्रिटिश उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति करना और भारत में ला पटक दिए गए ब्रिटिश उत्पादों का उपभोग करना" जारी रखना था।

व्यापारिक मध्य वर्ग ने उपनिवेश में औद्योगिक पूँजी के सफल प्रवेश का मार्ग प्रशस्त किया। औद्योगिक मध्य वर्ग अब भारत के साथ व्यापार में ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार को सहन करने को तैयार नहीं था। कंपनी की 'ज्यादतियों' के प्रति अब तक चुप्पी साधे रहा यह वर्ग अब उसकी आलोचना खुलकर करने लगा और शीघ्र ही कंपनी के एकाधिकार को भंग करने में सफल रहा।

### 11.3.2 ग्रामीण अर्थव्यवस्था और समाज

मुखर्जी की पुस्तक *सिक्स विलेजिज़ ऑफ़ बंगाल* एक ओर गाँव और दूसरी ओर व्यापक आर्थिक प्राधार के बीच विद्यमान संबंध पर एक अध्ययन प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक चार अध्यायों में विभाजित है। पुस्तक में उल्लेखित सभी छह गाँव तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान से लिए गए हैं। इनमें पाँच गाँव देश के अंदरूनी हिस्से में थे जबकि छठा गाँव नगर के पास स्थित था। इन गाँवों के भौतिक अभिलक्षण एक समान थे, यथा उपजाऊ भूमि, झोंपड़ियाँ, तालाब आदि, तथा जनसमुदाय हिंदू और मुस्लिम दोनों समुदायों से मिलकर बना था। लेखक ने गाँव के धार्मिक समूहों के साथ-साथ उनके प्रशासनिक संगठनों पर भी चर्चा की है। इन गाँवों में विभिन्न जाति-समूहों का विवरण देते हुए वह अनेक तथ्य प्रस्तुत करता है, यथा इन समूहों के बीच अंतर्संबंध, दो जाति-समूहों के बीच यदि अंतर्विवाह हो तो परिवार का स्वरूप, गाँव तथा स्थानीय संघों, पुलिस थाना व जिला बोर्ड के बीच विद्यमान संबंध। उसने ग्रामवासियों के खानपान, पहनावे, उन्हें होने वाले रोगों तथा गाँव व

उसके आसपास मनाए जाने वाले त्योहारों का भी विस्तार से वर्णन किया है। उसने इन गाँवों में जलापूर्ति के स्रोत पर चर्चा की है और यह भी पाया है कि यहाँ ग्रामवासियों में नशे की लत शून्यप्राय थी।

मुखर्जी ने उक्त ग्रामवासियों के नानाविध व्यवसायों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, यद्यपि कृषि ही मुख्य व्यवसाय है, इन गाँवों में बुनकर, कोल्हू, ठठेरे, दर्जी, दुकानदार, फेरीवाले, साहूकार, मछुआरे, भिखारी आदि भी बहुतायत से रहते हैं। नगर के निकट रहने के कारण अधिकांश सिलिमपुर निवासी नौकरीपेशा हैं। लेखक इसके बाद इन गाँवों में उपलब्ध मृदा की प्रकृति, जलवायु एवं सिंचाई सुविधाओं की जानकारी देता है। अनेक तालिकाओं की सहायता से उसने इन छह गाँवों में वर्ष भर ग्रामवासियों द्वारा की जाने वाली खेती के विभिन्न प्रकार दर्शाए हैं। तदंतर भूमिधारण एवं कृषि के विस्तार के साथ मुखर्जी पाते हैं कि अंदरूनी गाँवों में कृषि योग्य जोत (1 से 5 एकड़ भूमि) 50 प्रतिशत थी जबकि वही सिलिमपुर में 76 प्रतिशत थी। उसने कृषि कार्य में उपयोग किए जाने वाले बैलों व अन्य उपकरणों से प्राप्त सेवाओं का भी आकलन प्रस्तुत किया है। यह सब जानकारी माहवार व तालिकाबद्ध रूप में दी गई है।

आर्थिक भेदभाव के संबंध में मुखर्जी जो पहला तर्क देते हैं, यह है कि वर्ष 1941-42 में अपनी प्रति व्यक्ति आय के अंतर्गत परिवारों का वितरण बहुत विषमता दर्शाता है। लेखक के आँकड़े दर्शाते हैं कि यद्यपि प्रति व्यक्ति आय की सीमा रु. 11 से लेकर रु. 500 से ऊपर तक फैली हुई है, जनसामान्य के बड़े हिस्से की प्रति व्यक्ति आय रु. 11 व रु. 150 अथवा अधिक विशेष रूप से रु. 11 व रु. 50 के बीच ही है। आगे उसने घरेलू बजटों का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है। साथ ही, विभिन्न प्रकार के घरेलू बजटों के तहत परिवारों के पदानुक्रमित वितरण के आधार पर तथा औसत जीवन सूचकांकों के तहत मुखर्जी आर्थिक प्राधार में तीन वर्गों, यथा वर्ग-I, वर्ग-II, एवं वर्ग-III की बात करते हैं। वर्ग-I में पेशेवर समूह व सेवा-धारक, जोतदार, जमींदार और धनी किसान आते हैं; वर्ग-II में रैयत या प्रजा, कारीगर, लघु व्यापारी एवं गैर-खेतिहर स्वामी तथा वर्ग-III में रैयत-बरगादार या प्रजा-बटाईदार, खेतिहर मजदूर, अन्य व भिक्षुक आते हैं। वह लिखते हैं कि वर्ग-I के लोग एक समृद्ध एवं सहज जीवन का आनंद लेते हैं, वर्ग-III के लोग एक कठिन जीवन जीते हैं, और वर्ग-II में इन दोनों वर्गों के बीच कहीं नजर आता है।

समय बीतने के साथ उक्त तीनों वर्गों ने परिवर्तनों का अनुभव किया तथा युद्ध व अकाल की वजह से वर्ष 1921 से 1941 तक उन्होंने अपकर्ष ही देखा। सांख्यिकीय अनुप्रयोग के माध्यम से और तालिकाओं की सहायता से मुखर्जी दर्शाते हैं कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था कुछ शीर्षस्थ लोगों के हाथों में आय के संकेंद्रण तथा नीचे के विशाल जनसमूह की दरिद्रता से पहचानी जाती है।

उक्त नीचे के लोग लगभग एक-तिहाई जनसंख्या वाली एक मध्यवर्ती परत द्वारा शीर्षस्थ लोगों से जुड़े हैं। यह मध्यवर्ती परत शीर्षस्थ लोगों की बजाय तलस्थ लोगों से अधिक सहबद्धता दर्शाती है। बदलती परिस्थितियों में पदानुक्रमित प्राधार और अधिक विकृत हो जाता है, जहाँ वर्ग-I में मुद्रा का किंचित अवमूल्यन होता है, वर्ग-II में मंदी छा जाती है और वर्ग-III में व्यापक रूप से मुद्रा का अवमूल्यन व अपकर्ष देखा जाता है। इस अपकर्ष के पीछे कारण मुख्य रूप से वर्ग-II व III के लोगों द्वारा भूमि को भोगाधिकार के साथ रेहन रख दिया जाता था। मुखर्जी के अनुसार, इस क्रमिक दरिद्रता ने समाज को दो परस्पर विरोधी खेमों में बाँट दिया, यथा सम्पन्न वर्ग और विपन्न वर्ग।

**बॉक्स 11.1: आर्थिक प्राधार और सामाजिक जीवन**

मुखर्जी ... दर्शाते हैं... कि भले ही बंगाल में गाँवों की औसत आय कृषिक उत्पादन की आदिम तकनीकों की वजह से कम है, ग्रामवासियों के बीच एक सुपरिभाषित आय पदानुक्रम देखा जाता है। लेखक पारिवारिक व्यवसायों के स्पष्टतः तीन स्तर देखता है। सबसे ऊपर के स्तर में उप-जागीरदारों, जमींदारों व अपेक्षाकृत समृद्ध कृषकों के साथ-साथ वे व्यक्ति भी शामिल हैं जो अच्छे वेतन वाले पदों पर हैं अथवा भूमि में हिस्सा रखने वाले वृहद-स्तरीय व्यापार में संलग्न हैं। मध्य स्तर में मुख्यतः आत्मनिर्भर किसान व अन्य जन शामिल हैं, जैसे कारीगर व छोटे व्यापारी, जो भूमि के आधार पर अंशतः अपना आत्मनिर्भर अस्तित्व बनाए रखते हैं। निम्न स्तर पर शेष व्यावसायिक समूह आते हैं जो दूसरों के लिए काम करने अथवा केवल भिक्षावृत्ति पर निर्भर हैं...

उच्च स्तर पर लोगों के पास भूमि होती है, जो कि किसी भी कृषिक अर्थव्यवस्था में उत्पादन का मुख्य साधन होती है, और वे दूसरों की श्रमशक्ति का नियोजन करते हैं। मध्य स्तर पर लोग मुख्यतः स्वयं के लिए उत्पादन करते हैं और स्वयं के श्रम को ही नियोजित करते हैं, तथा निम्न स्तर पर लोगों के पास शून्य अथवा अल्प भूमि होती है और ये मुख्यतः अपनी श्रमशक्ति के बदले पारिश्रमिक अर्जित कर जीवनयापन करते हैं। (मुंशी, 2016: 36)।

यह आर्थिक प्राधार ही मुख्य रूप से ग्रामीण अर्थव्यवस्था की निकृष्ट स्थिति के लिए जिम्मेदार है क्योंकि उच्च वर्ग के पास उत्पादन तकनीकें विकसित करने की कोई वजह नहीं है। उद्योग के निकृष्ट विकास को देखते हुए भूमि पर काफी दबाव होने के कारण उच्च वर्ग को सस्ते श्रम का लाभ प्राप्त होता है। उसके अलावा, वे साधनहीन कृषक वर्ग को अपनी भूमि पर बटाईदारों के रूप में काम करने को बाध्य कर सकते हैं, जो कि मुखर्जी के अनुसार, दिहाड़ी मजदूरों को काम पर रखने से होने वाले लाभ की अपेक्षा अधिक लाभ की गुंजाइश प्रदान करता है।

कालांतर में, वर्ष 1922 से 1942 तक, आर्थिक प्राधार का अध्ययन एक निर्वाह अर्थव्यवस्था में प्राचीन व्यवस्था के विघटन की विस्तृति दर्शाता है। मध्य स्तर से उच्च स्तर तक मामूली हलचल दिखाई पड़ती थी, परंतु मध्य स्तर से निम्न स्तर तक बड़े पैमाने पर शून्य गति असमानता ही बढ़ा रही थी...

उन्हें लगता है कि जाति पदानुक्रम कुछ हद तक लोगों का भिन्न-भिन्न आर्थिक इकाइयों में विभाजन अवश्य दर्शाता है। तदनुसार, वह सभी उच्च जाति के हिंदू परिवार (ब्राह्मण, कायस्थ, व उनकी अर्ध-जातियाँ) आर्थिक प्राधार के उच्च स्तर पर पाते हैं और अनुसूचित जातियों के 83% परिवार निम्न स्तर पर व शेष मध्य स्तर पर पाते हैं।

'संयुक्त परिवार' उच्च स्तर पर अपेक्षाकृत अधिक पाए जाते हैं, 'सरल परिवार' (माता-पिता व आश्रित बच्चे) निम्न स्तर पर अधिक पाए जाते हैं, जबकि मध्य स्तर उक्त दोनों के बीच एक समूह के रूप में पेश आता है।

साक्षरता अपने निम्न स्तर पर है, और जो कुछ भी थोड़ी-बहुत शिक्षा है वह मुख्यतः उच्च स्तर तक ही सीमित है... (मुंशी, 2016)।

अंत में मुखर्जी उक्त आर्थिक परिवर्तनों का प्रभाव दो समुदायों (हिंदू और मुस्लिम) के जीवन, उनके नातेदारी प्रतिमानों, जाति समूहों तथा विवाह व परिवार संरचना में दर्शाते हैं। उनके लेखन में स्पष्ट किए गए कुछ मूल बिंदु निम्नवत् हैं -

1. भारत में ग्राम समुदाय, विशेष रूप से बंगाल में, कोई परिवर्तनशील सामाजिक इकाई नहीं था। वह बदलता ही रहा, हालाँकि रफ्तार धीमी रही होगी। उसका अपना ही गतिविज्ञान था, जो इतिहास के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है।
2. बंगाल में ग्राम समुदाय कोई 'अविभेदित' अथवा 'समतावादी' सामाजिक व्यवस्था नहीं दर्शाता था। यहाँ भेदभाव और असमानता को दोनों स्तरों पर देखा जा सकता था, यथा - (a) पदानुक्रमित जाति व्यवस्था में तथा (b) उत्पादन एवं संसाधन वितरण की समतावादी व्यवस्था में, जो कि विशेष रूप से बंगाल की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भूधृति (अथवा जोत) व आजीविका के अन्य साधनों से संबंध रखते थे।
3. वास्तव में जाति विभाजन के सामाजिक पहलू और भूमि व अन्य आर्थिक संसाधनों तक विभिन्न समूहों की असमान पहुँच में प्रकट उत्पादन संबंधों के आर्थिक पहलू आपस में जुड़े हुए हैं। यहाँ सामाजिक व्यवस्था समतावादी आर्थिक व्यवस्था में अंतर्निहित थी। साथ ही, असमानता को उस जाति व्यवस्था की विचारधारा से समर्थन व शक्ति प्राप्त होती थी जो लोगों व समूहों के बीच अपमानजनक भेदभाव करती थी।
4. ग्रामीण जनसाधारण के एक प्रतिदर्श सर्वेक्षण के आधार पर मुखर्जी ने उन तीन वर्गों का आस्तित्व देखा जिन पर हम ऊपर *सिक्स विलेजिज* में चर्चा कर चुके हैं।
5. प्रतिदर्श सर्वेक्षण के माध्यम से एकत्र किए गए आँकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि जाति के सामाजिक पदानुक्रम और आर्थिक प्राधार के बीच एक सहसंबंध है। वर्ग-I में ब्राह्मणों का प्रतिनिधित्व मुसलमानों की अपेक्षा अधिक है; वर्ग-II में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कहीं अधिक है तथा वर्ग-III में "अन्य" (निम्न जाति समूह व जनजाति समूह) सघनता दर्शाते हैं। मुखर्जी आगे स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार जाति-पदानुक्रम ने स्वयं को उस आर्थिक प्राधार में परंपरानुबद्ध कर लिया जो ब्रिटिश शासन काल के दौरान बंगाल में उभरा था।

अंततः अंग्रेजों के औपनिवेशिक शासन ने पारंपरिक सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं किया। ऐसा इसलिए था कि उनके द्वारा जनसामान्य का शोषण किए जाने में उच्च जातियों ने उनके सहयोगी की भूमिका निभाई थी। अंग्रेजों द्वारा रेलवे व संबद्ध नवाचारों की शुरुआत ने कृषिक अर्थव्यवस्था को निर्वाह उत्पादन से जिस उत्पादन में बदल जाने को प्रवृत्त किया तथापि इसने उच्च जाति के भूधारक-सह-बटाईदार संबंध के माध्यम से जनसाधारण के और अधिक शोषण का मार्ग प्रशस्त किया। औपनिवेशिक शासन द्वारा अपनाई नीतियों के कारण पारंपरिक आर्थिक व्यवस्था चरमरा गई। निम्न सामाजिक स्तर के लोग विघटित कृषक वर्ग के एक बड़े हिस्से का प्रतिनिधित्व करते थे। भूमिसंपन्न जातियों और वर्गों को सामाजिक एवं आर्थिक लाभ मिलते ही रहे। उपर्युक्त के अतिरिक्त, जाति व्यवस्था ने निम्न सामाजिक स्तर को सम्मोहन से अचेतन कर दिया, जो कि जाति की सीढ़ी पर चढ़ने का प्रयास करते ही रहे। जाति व्यवस्था ने मुसलमानों को भी प्रभावित



किया – हिंदू और मुस्लिम के बीच सामाजिक दूरी की खाई और चौड़ी हो गई। दबंग और शोषणकारी वर्गों के विरुद्ध पीड़ित जनता का भी एकजुट नहीं हो सकी। अंग्रेजों द्वारा फैलाई गई वे हेर-फेर की गई अलगाववादी विचारधारा का “विचित्र रूप से प्रतिगामी चरित्र था, जिसने लोगों की ऊर्जा को नष्ट कर दिया।” साथ ही, यह विरासत वर्तमान समय में बंगाल ही नहीं बल्कि देश के अन्य ग्रामीण क्षेत्रों में भी देखी जा सकती है।

### बॉक्स 11.2: ग्रामीण समाज की गतिकी

बंगाल के विषय में मुखर्जी को लगता है कि ब्रिटिश शासन काल के अंतर्गत पूर्व-ब्रिटिश काल के आत्मनिर्भर कृषक वर्ग को तबाह कर संपत्तिसम्पन्न और संपत्तिहीन वर्गों के बीच एक नया संबंध विकसित हुआ। “इस नए संबंध का विशिष्ट रूप से ‘प्रतिगामी’ चरित्र था क्योंकि जब, वास्तव में, उत्पादन संबंध जिंस उत्पादन के नए प्रकार्य हेतु उपयुक्त बन गया था, भूधारक-बटाईदार (जोतदार-बागदार) संबंध ने खेतिहर कृषि का स्वरूप ही बनाए रखा। यहाँ जमींदार वर्ग ने किसानों से उपज का एक भाग लेकर ‘लगान-प्रापक’ की भूमिका ही निभाई।

“जमींदार वर्ग बिना किसी निवेश के भूमि से प्राप्त लगान पर फलता-फूलता रहा। कालांतर में उस व्यवस्था को और मजबूत बना दिया गया। तदनुसार, वर्ष 1943 में, अकाल के दौरान, कृषक वर्ग का एक बड़ा हिस्सा न सिर्फ अपनी भूमि व भारवाहक पशु जैसे अन्य उत्पादन साधनों से हाथ धो बैठा, अपितु वह जीवित रहने के लिए भी अनाज माँगने को बाध्य हो गया, उत्पादन के लिए बीज स्वरूप अनाज माँगने की तो बात ही न करें।

“वैचारिक दृष्टि से भी जमींदार वर्ग समाज पर हावी था। तदनुसार, अपने दृष्टिकोण में कोई प्रगतिशील बदलाव लाने की बजाय समाज में निचले तबके के लोग जाति और सांप्रदायिक अलगाव की धारणा में ही डूबे रहे। इससे उन्हें प्रगतिशील विचारधारा के अनुसार संगठित करना दुष्कर हो गया” (मुंशी, 2016 : 37)।

अपनी पुस्तक *द सोशियोलॉजिस्ट एंड सोशल चेंज इन इंडिया टुडे* में मुखर्जी ने योजना और विकास के बीच संबंध दर्शाया है। उन्होंने विकास और सामाजिक परिवर्तन की समस्या को उठाया है और कहते हैं कि वह जन-केंद्रित होना चाहिए, यथा लोग स्वयं ही विकास का मसला हल कर लेते हैं। यहाँ वह स्पष्ट करते हैं कि आमतौर पर “ऊपर” से प्रेरित होने वाला विकास आवश्यक नहीं कि सामाजिक परिवर्तन लाए ही। वह बताते हैं कि भौतिक संस्कृति के उच्च क्रम से प्रेरित भौतिक विकास के परिणामस्वरूप सामाजिक व्यवस्था और लोगों के वैचारिक अनुस्थापन में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं आ सकता, जो कि पारंपरिक रूप से समग्र भारत हेतु विहित होता है। मुखर्जी जमशेदपुर का उदाहरण देते हैं, जो कि उस समय भारत का अर्धशती पुराना इस्पात नगर था।

मुखर्जी स्पष्ट करते हैं कि भौतिक रूप से विकसित जमशेदपुर के आसपास का क्षेत्र सामाजिक व्यवस्था और लोगों के वैचारिक अनुस्थापन में कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं दर्शाता है। सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन हेतु विधि वह इस प्रकार सुझाते हैं – i) तथ्यों और भ्रांतियों का ज्ञान (यथा, यह क्या है?); ii) ध्यान दिए जाने के उपयुक्त केंद्रबिंदु का मूल्यांकन (यथा, ऐसा कैसे है?); तथा iii) आगे के अनुसंधान हेतु अनुस्थापन (यथा, ऐसा क्यों है?)। मुखर्जी अपनी इस पुस्तक में आर्थिक पहलू के साथ सामाजिक परिवर्तन और

विकास के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलू का समेकन प्रस्तुत करते हैं। उनकी कार्य-प्रणाली इस अर्थ में मानवतावादी है कि उनका विश्वास भारतीय समाज के संपूर्ण विकास में है।

### बोध प्रश्न 1

1. रामकृष्ण मुखर्जी की पुस्तक *द राइज़ एंड फॉल ऑफ़ ईस्ट इंडिया कंपनी* का विशिष्ट अभिलक्षण क्या है? स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

2. रामकृष्ण मुखर्जी द्वारा अध्ययन किए गए छह गाँवों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था की निकृष्ट दशा हेतु आर्थिक प्राधार कैसे उत्तरदायी है? स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

### 11.3.3 भारतीय सामाजिकी का समाजशास्त्र

लेखक रामकृष्ण मुखर्जी के अपने शब्दों में उनकी पुस्तक *“सोशियोलॉजी ऑफ़ इंडियन सोशियोलॉजी (1978)* भारतीय सामाजिकी के विकास को समझने का एक प्रारंभिक किंतु आवश्यक प्रयास है।” उनकी यह कृति प्रणालीगत दृष्टिकोण से भारत में समाजशास्त्र के विकास का अध्ययन करती है। “हर समाज के लोग, साथ ही उससे सरोकार रखने वाले लोग वे जो उससे संबंध नहीं रखते, समय-समय पर उसके अतीत, वर्तमान व भविष्य के कार्यों के विषय में जानने की आवश्यकता महसूस करते हैं... भारतीय समाज इस संबंध में कोई अपवाद नहीं है।” भारतीय समाज के विषय में ज्ञान प्राप्त करना वैदिक काल से आरंभ हुआ और यह पुस्तक भारतीय सामाजिकी के समग्र इतिहास का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने का प्रयास करती है। इस विकास के इतिहास का यह दो चरणों में बाँटकर विश्लेषण करती है – (1) पूर्व-सामाजिकीय काल और (2) सामाजिकीय काल। इन दोनों अवधियों को कुछ संदर्भ समूहों द्वारा दर्शाया जाता है, यथा – (a) पूर्व-सामाजिकीय संदर्भ समूह, तथा (b) सामाजिकीय संदर्भ समूह। पूर्व-सामाजिकीय संदर्भ समूह में आते हैं – (i) सामाजिक दार्शनिक,

(ii) नीति-निर्माता, (iii) नीति-प्रवर्तक, और (iv) आद्य-समाजशास्त्री। दूसरी ओर, सामाजिकीय संदर्भ समूह का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं – (i) प्रथम अन्वेषक (1920-1940 के दशक), (ii) आधुनिकीकर्ता (1950 का दशक), (iii) अंतरंगी (1960 का दशक), (iv) अगुआ (1970 का दशक), तथा (v) गैर-अनुसारक (1970 का दशक)।

सामाजिक दार्शनिक भारतीय समाज में सदा विद्यमान रहे हैं। नीति-निर्माताओं में समाज सुधारक आते हैं और ये विचाराधीन समाज से अनन्य रूप से सरोकार रखते हैं। सामाजिक दार्शनिकों की भाँति सामाजिक समस्याओं पर उनका ध्यान भी समाज द्वारा द्योतित भिन्नता के स्थान-काल-जन आयामों तक ही सीमित रहता है। नीति-प्रवर्तकों में प्रशासकगण और सूचना-संग्राहक शामिल होते हैं। सामाजिक समस्याओं पर उनका ध्यान समाज तक ही सीमित रहता है, परंतु वह सामाजिक दार्शनिकों अथवा नीति-निर्माताओं के समान नहीं

होता। समाजविज्ञान की पूर्व-स्थापित विद्याशाखाओं से उभरते आद्य-समाजशास्त्री सामाजिक समस्याओं को एक ऐसे दृष्टिकोण से देखते हैं जो अन्य तीन समूहों से भिन्न होता है।

आधुनिकीकर्ता (मॉडर्नाइजर्स) का एक वर्ग भारत गणराज्य में उभरा। उन्होंने ऐतिहासिक दृष्टिकोण को छद्म वैज्ञानिक बताकर उसकी निंदा की और उसके स्थान पर संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण अपनाया। दूसरी ओर, अंतरंगी (इनसाइडर्स) उन दिनों संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रचलित व्यवहार विज्ञान के प्रसार में रुचि रखते थे। वे संज्ञानात्मक-ऐतिहासिक एवं मार्क्सवादी प्रवृत्तियों को समेकित करने का प्रयास भी कर रहे थे, जो कि प्रथम अन्वेषकों और आधुनिकीकर्ताओं के काल में पहले ही विद्यमान थीं। गैर-अनुसारक और अगुआ वर्ग अपनी विचारधारा, सामाजिक अनुसंधान के परिकल्पन एवं अनुसंधान क्रियाविधि में आधुनिकीकर्ताओं व अंतरंगियों से मतभेद रखता था। मुखर्जी इस वर्ग का विश्लेषण पाँच प्रश्नों के दृष्टिकोण से करने का प्रयास करते हैं, यथा – (i) यह क्या है?, (ii) यह कैसा है?, (iii) यह क्यों है?, (iv) यह क्या होगा?, तथा (v) यह क्या होना चाहिए? उनका कहना है कि समाज की किसी भी परिघटना का अध्ययन इनके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों दृष्टिकोणों से इन्हीं पाँच प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में किया जाना होता है। वह आगे कहते हैं कि इन पाँच प्रश्नों को किसी भी परिवर्तनशील परिघटना के वस्तुपरक अवबोधन हेतु उनके कालानुक्रमिक क्रम में ही पूछा जाना होता है। इन पाँच प्रश्नों पर ही अपने-अपने अधिमान्य महत्व के कारण संदर्भ समूह एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

### 11.3.4 समाजशास्त्र और समाज

समाजशास्त्र समाज के शास्त्र अथवा विज्ञान को इंगित करता है। समाज की कल्पना ऐसे व्यक्तियों और समूहों की एक जटिल समष्टि के रूप में की जा सकती है जो अपने (i) कार्य एवं अंतर्क्रियाओं, (ii) सामाजिक व्यवहार तथा (iii) सामाजिक संबंधों के लिहाज से व्यवस्थित रूप में एकीकृत हों। यह समष्टि संघटित होती है और इसके प्रतिपालित उद्देश्य (iv) सामाजिक संस्थाओं के प्रेरक अभिकर्ताओं के उद्गम की ओर प्रवृत्त करते हैं। सामाजिक संस्थाएँ इन व्यक्तियों को भौतिक और अभौतिक वस्तुओं की एक व्यवस्था के भीतर समेकित कर देती हैं। वे उन्हें व्यक्तित्व से परे भी एक चरित्र प्रदान करती हैं। ये संस्थाएँ उन व्यक्तियों की मंडलियों के माध्यम से संचालित होती हैं जो (v) सामाजिक समूहों में समेकित हो जाते हैं। उक्त समूह उन संस्थाओं के अनुसार अनेक प्रकार से बनते हैं जो किसी न किसी प्रकार के समूहीकरण को जन्म देती हैं। उदाहरण के लिए, परिवार नामक संस्था एकल परिवार, मातृवंशीय-मातृस्थानीय परिवार आदि परिजन-समूहों से जुड़ी होती है।

समाज एक ऐसी इकाई होता है जो लोगों के जीवन को अनुकूलित करती है और कारणता की सीमा के भीतर अधोहस्ताक्षरित व्यक्तिगत भिन्नताओं की अनुमति भी देती है। यदि, तथापि, ये व्यक्तिगत भिन्नताएँ अभिकल्पित हो जाती हैं तो उन्हें विद्यमान संस्था के माध्यम से अथवा नई संस्थाओं को विकसित कर संस्थागत कर लिया जाता है।

समाज गतिशील संतुलन की अवस्था में रहता है अर्थात् समाज के विभिन्न विन्यास अथवा रूप (a) किसी भी समयबिंदु पर अपनी पहचान कायम रखते हैं, तथा (b) कालांतर में अपने भीतर और अपने बीच बदलते रहते हैं। समाज विश्व समाज के प्रत्येक विन्यास के भीतर और बीच में संपूरक और विरोधाभासी दोनों समूह-अन्योन्यक्रियाएँ शामिल करके चलता है। समाज की समाकृतियाँ भिन्नता के स्थान, काल और लक्ष्य आयामों से पहचानी जाती हैं। मुखर्जी समाज के उपर्युक्त अभिलक्षणों और उसके कार्यचालन को कालांतर में भारतीय संयुक्त परिवार, तथा भारत (अंग्रेजों द्वारा उपनिवेशित) से उद्भूत पाकिस्तान से बंगलादेशी समाज व राष्ट्र-राज्य के उदय संबंधी उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं। बंगलादेश की उत्पत्ति को प्रथम राजनीतिक कारक (दो-राष्ट्र सिद्धांत) और फिर आर्थिक कारक (पाकिस्तान के पूर्वी और पश्चिमी धड़ों के बीच असमान विनिमय) द्वारा स्पष्ट किया

जा सकता है। इनमें से किसी भी एक कारक के माध्यम से व्याख्या बंगलादेश नामक राष्ट्र-राज्य के उदय एवं कार्यचालन संबंधी प्रक्रिया एवं परिघटना के एकतरफा और भ्रामक बोध को ही जन्म देगी। इसका संशोधन समाजशास्त्र की उपयुक्त ज्ञान-मीमांसा में निहित है, जिसमें सामाजिक ढाँचे के शीर्ष पर सभी सामाजिकीय विशेषताओं का समेकन अपेक्षित होता है। समाज के कार्यचालन संबंधी बोधगम्य जानकारी प्राप्त करने के लिए सभी सामाजिकीय विशेषताओं को एकता के बंधन में बाँधा जाएगा। समाजशास्त्र स्वयं एक विशेषता के रूप में जटिल समष्टि, यथा निकाय स्वरूप सामाजिक विज्ञान, का एक पारस्परिक रूप से अनन्य हिस्सा है। तदनुसार मुखर्जी ने भारतीय समाजशास्त्र में दो अग्रदूतों या प्रथम अन्वेषकों, यथा राधाकमल मुखर्जी (1957) एवं डी.पी. मुखर्जी (1958), की भाँति एक सामान्य आधार पर सभी सामाजिक-विज्ञान विषयों को समेकित किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया। समाजशास्त्र इस आवश्यकता को समझता है। विशेषज्ञता वाले सभी विज्ञान विषयों हेतु प्रसंगों को अंततः एक सामान्य स्वरूप ग्रहण कर लेने वाले समाजशास्त्र की विशेषता द्वारा ही समेकित किया जाता है।

सामाजिक वास्तविकताओं को समझने के लिए मुखर्जी समाज के 'वैज्ञानीकरण' हेतु आह्वान करते हैं। 'वैज्ञानीकरण' का अर्थ है - किसी परिघटना का व्यवस्थित अवबोधन एवं मूल्यांकन। समाज की परिघटना के वैज्ञानीकरण हेतु पाँच प्रश्नों के उत्तरों का संयुक्त अनुसरण अपेक्षित होता है। ये पाँच प्रश्न भिन्नता की किसी भी व्यवस्था के मूल्यांकन की ओर संकेत करते हैं। पहला प्रश्न (यह क्या है?) उसके वर्गीकरण से संबंध रखता है (यथा, उसकी आंतरिक अभिव्यक्तियों एवं भिन्नताओं के साथ-साथ उसके अन्य व्यवस्थाओं के साथ अंतर्संबंधों का विश्लेषण)। तीसरा प्रश्न (ऐसा क्यों है?) उसकी कारणता की व्याख्या की ओर संकेत करता है, यथा व्यवस्था में व उसके कार्यचालन एवं परिवर्तन की कारणता। यह पूर्व-व्यवस्थागत परिवर्तनों के मामलों में विशेष रूप से अत्यावश्यक होता है, उदाहरणार्थ पूँजीवाद द्वारा सामंतवाद के प्रतिस्थापना की व्याख्या। चौथा प्रश्न (यह क्या होगा?) भविष्य में भिन्नता की व्यवस्था के प्राधार, प्रकार्य एवं प्रक्रिया की पूर्वानुमेयता की ओर प्रवृत्त करता है। पाँचवाँ प्रश्न (यह क्या होना चाहिए?) सुझाए गए अथवा प्रस्तावित परिवर्तनों की वांछनीयता से संबंधित है।

व्यवस्थागत सामाजिकी निम्नलिखित के समन्वयन हेतु प्रयास करेगी -

- (i) अभिजात-वर्ग विशेषज्ञों के मानांकन का इस बात के लिए मूल्यांकन कि लोगों को अपने आधारभूत मूल्यों को साकार करने की दिशा में क्या आवश्यक मानते हैं;
- (ii) वैयक्तिक रूप से गठित समूहों के मानांकन का इस बात के लिए मूल्यांकन कि लोग स्वयं क्या इच्छा रखते हैं; तथा
- (iii) किसी स्थान-, काल-, एवं जन-विशिष्ट दशा में सामाजिक वास्तविकता के मूल्यांकन संबंधी उपर्युक्त दो समुच्चयों की पारस्परिक क्रियाओं से निकाले जाने वाले निष्कर्ष।

व्यवस्थागत सामाजिकी नैदानिक अनुसंधान पर निर्भर करती है। वह तभी प्रभावशाली कहलाएगी जब संसूचक, परीक्षण प्राक्कल्पनाएँ इत्यादि विकसित करने के लिए परिमाणात्मक सूचना उपलब्ध होगी।

### 11.3.5 वैज्ञानिक विधि

ज्ञानमीमांसात्मक मुद्दों के साथ जीवनपर्यंत जुड़ते रहने के फलस्वरूप मुखर्जी की कलम से दो पुस्तकें *वाई यूनिटरी सोशल साइंस?* तथा *द मेज़र ऑफ़ टाइम इन द अप्रेज़ ऑफ़ सोशल रिअल्टी* के रूप में सामने आईं। इन दो कृतियों में मुख्य आलोच्य विषय निम्नवत् प्रस्तुत किए जा सकते हैं -

सर्वप्रथम मुखर्जी सामाजिक विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान के बीच अकादमिक विभाजन के माध्यम से यथार्थ ज्ञान के विखंडन तथा विशेषज्ञता के नाम पर सामाजिक विज्ञान के बढ़ते

विभाजन की निंदा करते हैं। वह एक 'एकात्मक सामाजिक विज्ञान' विकसित किए जाने के प्रयास पर जोर देते हैं। समाजशास्त्र के इस एकात्मक सामाजिक विज्ञान के रूप में विकसित हो जाने की संभावना है। इसकी उपयुक्त कार्यप्रणाली तर्कसंगति को निश्चयात्मकता की 'नियतात्मक अवस्थिति' को दूर करने और एक 'संभाविकी' विज्ञान स्वरूप वास्तविकता की अभिव्यक्तियों के "अनिश्चितता"—आधारित व्यवस्थित अन्वेषण की ओर बढ़ने के सदर्भ में परिभाषित करेगी। "प्राकृतिक, जैविक और पृथ्वी विज्ञान" सभी प्रसंभाव्यता की प्रकृति का ही अन्वेषण करते हैं। इस उपयुक्त कार्यप्रणाली का अनुसरण ही समग्र ज्ञान की एकात्मकता को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगा। यह 'वास्तविकता का मूल्यांकन करने हेतु ज्ञान की खोज में प्रतीयमानतः अपरिहार्य बाधा... विज्ञान एवं कला (मानविकी) के लेबल चस्पा कर खड़ी की गई' को दूर करेगी।

मुखर्जी द्वारा सामाजिक परिघटनाओं के संबंध में आँकड़ों का संग्रहण एवं विश्लेषण करने में सांख्यिकी का अनुप्रयोग किए जाने की दृढ़ता से अनुशंसा की गई है। विज्ञान, विशेषकर सामाजिक, का कार्य परिघटनाओं की प्रकृति का मूल्यांकन किया जाना ही है। किंतु वैज्ञानिक यह सुनिश्चित करने के लिए व्यक्तिपरकता का अतिक्रमण करने को प्रतिबद्ध रहेगा है कि "वस्तुपरकता ही ज्ञान के संसार पर राज करती है।" वह प्रतीयमान संसार के 'क्या', 'कैसे' और 'क्यों' की जाँच-पड़ताल करेगा और 'यह क्या होगा' और 'यह क्या होना चाहिए' की खोज करने से पीछे नहीं हटेगा।

**बॉक्स 11.3: कार्यविधि का मुद्दा**

आर. एम. [रामकृष्ण मुखर्जी] के काम में मुख्य था – वैज्ञानिक विधि का मुद्दा। इस संबंध में उनकी संकल्पना में विशिष्ट रूप से शामिल रहे – अवलोकन, मापन, वर्गीकरण, तुलना और विवेचनात्मक निष्कर्ष। इसके अलावा, सामाजिक यथार्थ के ऐतिहासिक और मूल्य आयामों के प्रति भी वचनबद्धता देखी गई। वह मार्क्सवादी दृष्टिकोण से बद्धमूल रहे परंतु असमीक्षात्मक ढंग से नहीं; उन्होंने उससे जुड़े विभिन्न द्विभाजनों पर सवाल उठाया, यथा भौतिक आधार – वैचारिक अधिरचना तथा वस्तुपरकता–व्यक्तिपरकता (1979, यहाँ मदान, 2016: 27 से उद्धृत)।

**बोध प्रश्न 2**

रिक्त स्थान भरें—

1. सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन किए जाने के लिए रामकृष्ण मुखर्जी द्वारा प्रस्तावित विधि का संक्षिप्त वर्णन करें।

.....  
 .....  
 .....  
 .....

2. 'समाज के वैज्ञानीकरण' का क्या उद्देश्य है? स्पष्ट करें।

.....  
 .....  
 .....  
 .....

---

## 11.4 महत्वपूर्ण कृतियाँ

---

रामकृष्ण मुखर्जी की कुछ महत्वपूर्ण कृतियाँ निम्नलिखित हैं –

1. *द डायनैमिक्स ऑफ़ ए रूरल सोसाइटी* (1957)
2. *द सोशियोलॉजिस्ट एंड सोशल चेंज इन इंडिया* (1965)
3. *सिक्स विलेजिज़ ऑफ़ बंगाल* (1971)
4. *द राइज एंड फॉल द ईस्ट इंडिया कंपनी* (1974)

---

## 11.5 सारांश

---

रामकृष्ण मुखर्जी ने स्वयं को अनुसंधान के क्षेत्र तक ही सीमित रखा। उन्होंने कॉलेजों अथवा विश्वविद्यालयों में नियमित रूप से नहीं पढ़ाया। भारत और बाहर के देशों में उनके अनेक प्रशंसक हैं। तथापि, वह भारत में शिक्षा के क्षेत्र में अपने अनुयायियों की कोई मंडली नहीं बना सके। फिर भी इस बात से किंचित ही इनकार किया जा सकता है कि मुखर्जी ने भारत और विदेशों में समाजशास्त्र के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इस इकाई में हमने मुखर्जी के काल में उस सामाजिक एवं अकादमिक परिवेश के विषय में जाना जिसने उनकी कृतियों को प्रभावित किया। हमने उनकी मुख्य अवधारणाओं पर विस्तृत चर्चा की और उनकी कुछ महत्वपूर्ण कृतियों एवं लेखों से तादात्म्य स्थापित किया।

---

## 11.6 संदर्भ

---

मदान, टी.एन. (2016), रामकृष्ण मुखर्जी : इन मैमोरेरियम, *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, अंक 51, 10: 26–29।

मुंशी, सुरेंद्र (1986), सोशल चेंज इन इंडिया : रिकन्सिडरिंग रामकृष्ण मुखर्जी, *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, अंक 51, 39: 35–40।

राधाकृष्ण मुखर्जी (1957), *द डायनैमिक्स ऑफ़ ए रूरल सोसाइटी*, बर्लिन : अकादमीय-वर्लेग।

राधाकृष्ण मुखर्जी (1965), *द सोशियोलॉजिस्ट एंड सोशल चेंज इन इंडिया*, नई दिल्ली : प्रेंटिस हॉल।

राधाकृष्ण मुखर्जी (1971), *सिक्स विलेजिज़ ऑफ़ बंगाल*, बम्बई : पॉपुलर प्रकाशन।

राधाकृष्ण मुखर्जी (1974), *द राइज एंड फॉल द ईस्ट इंडिया कंपनी*, न्यूयार्क : मंथली रिव्यू प्रैस।

राधाकृष्ण मुखर्जी (1977), *सोशियोलॉजी ऑफ़ इंडियन सोशियोलॉजी*, नई दिल्ली : एलाइड।

राधाकृष्ण मुखर्जी (1993), *सिस्टेमिक सोशियोलॉजी*, नई दिल्ली : सेज।

राधाकृष्ण मुखर्जी (2012), *वाई यूनिटरी सोशल साइन्स*, दिल्ली : प्राइमस बुक्स।

### बोध प्रश्न 1

1. मुखर्जी की पुस्तक *द राइज एंड फॉल ऑफ़ द ईस्ट इंडिया कंपनी (1955)* का विशिष्ट अभिलक्षण यह है कि इसमें भारत के समाज एवं अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों के विषय में ऐतिहासिक आँकड़ों का विश्लेषण करने में आदिम संचय की मार्क्सवादी संकल्पना का प्रयोग किया गया है।
2. मुखर्जी द्वारा अध्ययन किए गए छह गाँवों में आर्थिक प्राधार मुख्यतः दो कारणों से ग्रामीण अर्थव्यवस्था की निकृष्ट स्थिति के लिए जिम्मेदार है। प्रथम, उच्च वर्ग के पास उत्पादन तकनीकें विकसित करने हेतु प्रेरणा का अभाव है। उद्योग के निकृष्ट विकास को देखते हुए भूमि पर बहुत अधिक दबाव है, जिससे उच्च वर्ग को सस्ते श्रम का लाभ मिलता है। दूसरे, वे गरीब किसानों को अपनी भूमि पर बटाईदार के रूप में काम करने को बाध्य कर सकते हैं, जो कि मुखर्जी के अनुसार, उन्हें दिहाड़ी मज़दूरों को काम पर रखने की तुलना में लाभ की बेहतर गुंजाइश पेश करता है।

### बोध प्रश्न 2

1. मुखर्जी सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन हेतु यह विधि सुझाते हैं – (i) तथ्यों और भ्रांतियों का ज्ञान (यथा, यह क्या है?); (ii) ध्यान के उपयुक्त केंद्रबिंदु का मूल्यांकन (यथा, यह कैसा है?); तथा (iii) आगे और अनुसंधान हेतु अनुस्थापन (यथा, यह क्यों है?)।
2. 'वैज्ञानीकरण' का अर्थ होता है – किसी परिघटना का व्यवस्थित अवबोधन एवं मूल्यांकन। मुखर्जी के अनुसार, सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए 'समाज का वैज्ञानीकरण' आवश्यक है।